यदि हमारी मंजिल शिक्षकों की मुक्ति है तो वहाँ तक पहुँचने का एक प्रमुख मार्ग मननशील अभ्यास है

एक शिक्षा कार्यकर्ता के व्यक्तिगत अनुभवों की अन्तर्दृष्टि

कुलदीप गर्ग

समस्या

शिक्षकों के किसी भी प्रकार के व्यावसायिक विकास के लिए उन्हें अपने कार्यक्षेत्र के विभिन्न चरणों में निरन्तर सहायता[1] की आवश्यकता होती है, लेकिन भारत में आज हम यह देखते हैं कि इस प्रकार की सहायता की उपलब्धता और गुणवत्ता दोनों ही निराशाजनक हैं। एक और दिलचस्प पहलू यह है कि जहाँ कहीं इस तरह की अच्छी और नियत समय की सहायता मिलती भी है तो दो बातें देखने को मिलती हैं। पहली तो यह कि लगभग पाँच साल बाद इसकी प्रभावशीलता गतिहीन हो जाती है और दूसरी यह कि जब वह परियोजना समाप्त हो जाती है तो नई पहलों और अभ्यासों में काफी गिरावट आ जाती है और फिर धीरे-धीरे वे लुप्त हो जाती हैं। इसलिए बाहरी सहायता न तो लम्बी अवधि तक काम करती है और न ही अपनी पहल और नए बदलावों को बनाए रख पाती है। कम से कम मेरे पिछले एक दशक (2005 से 2012 तक) का अनुभव तो यही बताता है जिसके दौरान (दिगन्तर[2] में विभिन्न टीमों के साथ कार्य करते हुए) मैंने विभिन्न परियोजनाओं, जैसे शिक्षा समर्थन परियोजना, फागी और गुणवत्ता शिक्षा कार्यक्रम, बारां में कार्य किया।

इन अवलोकनों से यही सवाल उभरकर सामने आता है कि क्या बाहरी सहायता स्थायी शैक्षिक परिवर्तन को बढ़ावा दे सकती है?

हमारे पास इस प्रश्न का कोई निश्चित उत्तर नहीं है। लेकिन लगता तो यही है कि बाहरी सहायता के बन्द होने के बाद धीरे-धीरे वे सब प्रभाव और बदलाव भी समाप्त हो जाते हैं जो इस प्रकार की सहायता के चलते हासिल किए जाते हैं।

लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि हमें इनके बारे में सोचना या इनका कार्यान्वयन बन्द कर देना चाहिए-ऐसा करना आत्मघाती होगा। लोकतांत्रिक देश में एक जीवन्त और स्वस्थ शिक्षा प्रणाली के लिए स्वयंसेवी संगठनों, माता-पिता के संगठनों, गैर सरकारी संगठनों, शिक्षक संघों, शोध समूहों और सांस्कृतिक समूहों की भागीदारी महत्वपूर्ण होती है। लोकतांत्रिक देश में बाहरी सहायता और हस्तक्षेप एक महत्वपूर्ण और तर्कसंगत आवश्यकता है ताकि शैक्षिक नीतियों और अभ्यासों के विकास पर पैनी नजर रखी जा सके और जब कभी भी वे अपने बुनियादी मूल्यों - यानी लोकतंत्र के पुनरुत्पादन और उसे बनाए रखने के मूल्यों - से हटें तो आवाज उठाई जा सके।

इसलिए बाहरी सहायता के बारे में सोचना उचित ही है लेकिन उसका अन्दाज अलग होना चाहिए, उसके उद्देश्य अलग होने चाहिए जो ऐसी स्थितियों के निर्माण पर ध्यान दें जिनमें शिक्षक और हितधारक स्वयं आगे बढ़कर अपने सीखने या अपनी व्यावसायिक जरूरतों और अपने विकास की जिम्मेदारी खुद उठाएँ। वे स्वयं पता लगाएँ कि उनकी समस्या क्या है, उन्हें किस क्षेत्र में विकास करना है; उसका समाधान क्या हो सकता है और फिर उसे लागू भी करें। बाहरी सहायता पर पूरी तरह से निर्भर होने और अन्त में परिणामों के प्रति जवाबदेह न होने की तुलना में यह प्रक्रिया स्वयं-चालित होगी और इसलिए स्वपोषी भी होगी। इसका विकास और पोषण उन हितधारकों द्वारा ही हो सकता है जो खुद ही सीखने वाले हों, खुद सुधार करने वाले हों, खुद निर्धारण करने वाले हों, सहायता तलाशने वाले और जवाबदेह लोग हों।

अगर हम इस सूत्र से सहमत हैं तो सवाल उठता है कि यह कैसे सम्भव है? ऐसे लोग या हितधारक कैसे मिलेंगे? उनके विकास की प्रक्रिया क्या होगी? बाहरी सहायता की तब भूमिका क्या होगी?

---

[1] *यह सहायता तीन अलग-अलग रूपों में मिलती है : i) सेवा-पूर्व शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रम जो शिक्षा की बुनियादी समझ का निर्माण करती है और अच्छे शिक्षण और स्कूली जीवन के प्रबन्धन के लिए आवश्यक क्षमताओं और मनोवृत्ति का विकास करती है, ii) नियमित सेवाकालीन कार्यक्रम जो एक ऐसा मंच ढूँढ़ने में शिक्षकों की सहायता करते हैं जिसमें वे अपने व्यावसायिक अभ्यास में आने वाली विभिन्न समस्याओं और चुनौतियों के बारे में चर्चा कर सकते हैं और उनके हल खोज सकते हैं; और iii) विभिन्न सरकारी या गैर सरकारी या स्वयंसेवी परियोजनाओं से मिलने वाली सहायता, जिसका लक्ष्य शिक्षकों के शैक्षिक, प्रणालीगत और बुनियादी संरचनात्मक समस्याओं या चुनौतियों के सम्बन्ध में शिक्षकों और विद्यालयों की सहायता करना हो।*

[2] *दिगन्तर एक गैर सरकारी संगठन है जो प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में कार्य करता है। यह कुछ वैकल्पिक स्कूल भी चलाता है। यह जयपुर में है। इसके बारे में अधिक जानकारी के लिए www.digantar.org देखें।*

[3] *पोर्टफोलियो लेखन से यहाँ आशय है शिक्षक की किसी शैक्षिक समस्या (जो कि उसने खुद चिन्हित की है) का वर्णन, उसे हल करने के लिए सोचे गए उपाय, उपायों को क्रियान्वित करने के अनुभव, उनके नतीजे और साक्ष्य आदि के वर्णन का एक विस्तृत और सुव्यवस्थित संग्रह। यह संग्रह शिक्षक के किसी शैक्षिक समस्या के प्रति उसके सैद्धान्तिक नजरिए और उसके द्वारा उसके हल ढूँढ़ने की पूरी यात्रा का प्रस्तुतिकरण है। टीचिंग पोर्टफोलियो शिक्षक की सीख को साक्ष्य के साथ दूसरों के साथ साझा करने का एक टूल भी है।*

एक सहभागी क्रियात्मक शोध परियोजना से प्राप्त अनुभव और अन्तर्दृष्टि

1. परियोजना की पृष्ठभूमि

ऊपर दिए गए प्रश्नों के उत्तर खोजने के लिए मैं अपने कुछ अनुभव और अन्तर्दृष्टि साझा करना चाहूँगा, जो बहुत स्थानीय हो सकते हैं और शायद इन प्रश्नों के सामान्य उत्तर न दे पाएँ। लेकिन साथ ही इस बात से भी इनकार नहीं किया जा सकता कि स्थानीय अनुभव हमें महत्वपूर्ण सैद्धान्तिक अन्तर्दृष्टि प्रदान करते हैं जो आगामी वर्षों में शिक्षा सम्बन्धी परिघटनाओं के लिए समीचीन सिद्धान्त के निर्माण के लिए आवश्यक हैं।

दिगन्तर ने राजस्थान के जयपुर जिले के फागी ब्लॉक में 'शिक्षक सशक्तीकरण कार्यक्रम' नामक एक सहभागी क्रियात्मक शोध (Participatory Action Research - PAR) परियोजना शुरू की जो 2013 से 2016 के बीच चली। इसमें 30 सरकारी शिक्षक और दिगन्तर के तीन शोधकर्ता शामिल थे। मैं भी इसका हिस्सा था। यह राजस्थान सरकार, WATIS (Wipro Applying Thoughts in Schools) और दिगन्तर का साझा प्रयास था। इसका उद्देश्य यह पता लगाना था कि अगर मननशील शिक्षक बनने में प्रतिभागी शिक्षकों की मदद करनी है तो पोर्टफोलियो लेखन और उस पर नियमित रूप से सहकर्मी-समूह में आपसी चर्चाएँ किस प्रकार से सहायक हो सकती है? ध्यान देने वाली बात यह है कि इस परियोजना में आधारभूत रूप से यह बात मान ली गई थी कि पोर्टफोलियो लेखन और नियमित रूप से सहकर्मी समूह में आपसी चर्चाएँ करने से चिन्तन-मनन की वह प्रक्रिया शुरू हो सकती है जिसके चलते शिक्षकगण खुद ही सीखने वाले, खुद सुधार करने वाले, खुद निर्धारण करने वाले, सहायता तलाशने वाले और जवाबदेह पेशेवर बन सकते हैं - यानी ऐसे हितधारक जिनकी जरूरत शिक्षा के स्व-संचालन और स्व-पोषण के विकास के लिए आवश्यक है।

इस परियोजना के निष्कर्षों और अपने अनुभवों को बताने से पहले हमें इस परियोजना के सैद्धान्तिक ढाँचे को समझना होगा ताकि हम इसे अपने सन्दर्भ के साथ जोड़ सकें और इसके समग्र उद्देश्यों व उन्हें प्राप्त करने के साधनों को समझ सकें। इसे आसान बनाने के लिए मैंने इसे नीचे दिए गए चित्र की सहायता से समझाने की कोशिश की है –

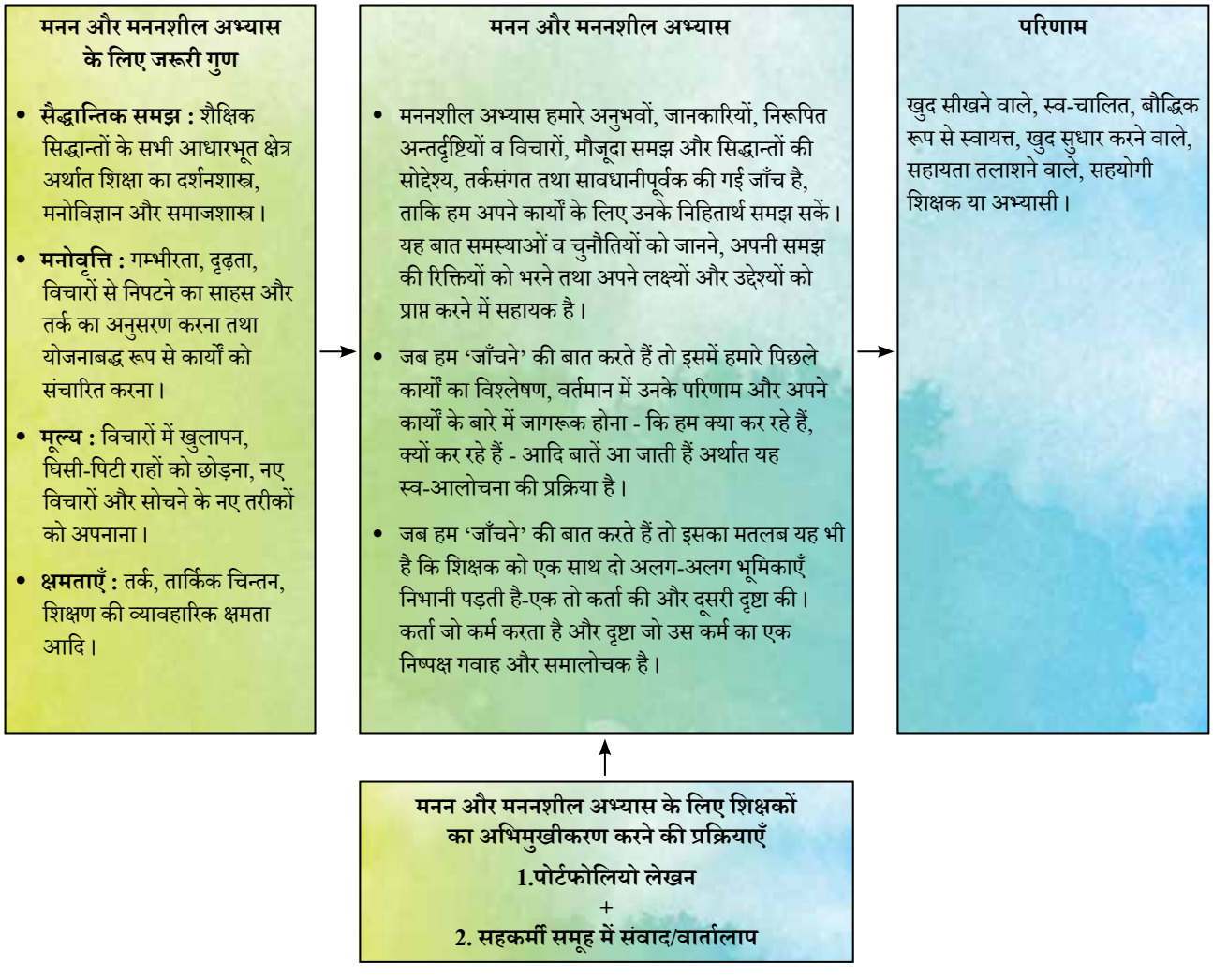

इस चित्र से पता चलता है कि इस परियोजना ने किस प्रकार से एक ऐसे सैद्धान्तिक फ्रेमवर्क की कल्पना की जो शिक्षक को बदल सकती है। इस परियोजना में इस कल्पित फ्रेमवर्क में निम्नलिखित परस्पर सम्बद्ध तत्व देखने को मिलते हैं-

i) सहकर्मियों के साथ लिखना और संवाद करना सरल-सी बात लग सकती है लेकिन वास्तव में यह काफी मेहनत वाला कार्य है और इसे गम्भीरता के साथ किया जाए तो व्यक्ति में बदलाव भी आ सकता है। हम या हमारे मित्र कक्षा में पढ़ाते समय किस प्रकार की विधियाँ अपनाते हैं - इस बात पर समीक्षात्मक रूप से वार्तालाप करने और फिर उसे लिखने के लिए बहुत सोचना पड़ता है- मैंने विभिन्न मुद्दों का सामना करने के पहले, उसके दौरान और बाद में क्या किया? मैंने आज कक्षा में क्या किया? मैंने ऐसा कैसे और क्यों किया? ऐसा करने से मेरे विद्यार्थियों को पाठ्यचर्या के उद्देश्य प्राप्त करने में कैसे मदद मिलेगी? मुझे कैसे पता चलेगा कि उन्होंने ये उद्देश्य हासिल कर लिए हैं? कुछ विद्यार्थी कक्षा की गतिविधियों में भाग क्यों नहीं ले रहे थे? आदि। वास्तव में ये सारी बातें शिक्षक को सैद्धान्तिक वास्तविकता के विशाल सन्दर्भ में अपने सारे कार्य के बारे में यह सोचने को मजबूर करती हैं कि मैं एक शिक्षक के रूप में क्या हूँ? मेरी भूमिकाएँ क्या हैं? मैं यहाँ क्यों हूँ? हम अपनी पीढ़ी को क्यों शिक्षित कर रहे हैं? धीरे-धीरे यह दो-तरफा प्रक्रिया बन जाती है : आप एक कर्ता के साथ-साथ एक दृष्टा बनकर अपने ही कार्य के आलोचक भी बन जाते हैं। और अब आप मात्र यांत्रिक कर्ता बनकर नहीं रह जाते; अब आप एक ऐसी मानसिक स्थिति की ओर बढ़ते हैं जहाँ आप अपने कार्य, अपने उद्देश्यों और उन उद्देश्यों को पाने के अपने तरीकों बारे में तो जागरूक होते ही हैं साथ ही आपको उन सभी चीजों का भान भी होने लगता है जो अभी भी आपको परेशान कर रही हैं और/या आपकी मदद कर रही हैं -और इस तरह से आप एक पेशेवर मननशील शिक्षक बन जाते हैं।

ii) लेखन और संवाद एक शिल्प की तरह होते हैं जिसे शिक्षा की कुछ सैद्धान्तिक समझ के द्वारा ही सीखा जा सकता है (जैसे मानव प्रकृति, समाज की प्रकृति, मानव के ज्ञान और अधिगम की प्रकृति आदि की समझ); रुझान (जैसे गम्भीरता, दृढ़ता); मूल्य (जैसे घिसी-पिटी राहों पर न चलना, दिमाग का खुलापन); और क्षमताएँ (जैसे तार्किक सोच, पढ़ाने की क्षमता)। इसलिए, अगर कोई अपने खुद के शैक्षिक अभ्यासों पर लिखना और वार्ता करना चाहता है तो उसे खुद को बुनियादी सैद्धान्तिक विमर्श की ओर उन्मुख करना होगा क्योंकि सिद्धान्त एक मशाल की तरह होते हैं जो अँधेरे में रोशनी फैला कर चीजों को देखने में आपकी मदद करते हैं। साथ ही ये एक टूल बॉक्स की तरह हैं जिसमें कई उपकरण होते हैं और ये उपकरण आपकी सभी पेशेवर जरूरतों से निपटने में आपकी मदद करते हैं। कोई भी गम्भीर पेशेवर अभ्यास विभिन्न सैद्धान्तिक विमर्श के समेकित भण्डार पर ही आधारित होता है।

इसलिए इस परियोजना में एक रणनीति अपनाई गई। सबसे पहले तो इस बात पर जोर दिया गया कि रोजमर्रा के अनुभवों और सिद्धान्तों के बीच की खाई पाटी जाए। पोर्टफोलियो और संवादों में इन दोनों को एक-दूसरे में समाविष्ट करना चाहिए। अनुभवों को सिद्धान्त के लेंस से देखना चाहिए और सिद्धान्त को कर्म में उतारना चाहिए ताकि उसके प्रभाव और उसकी व्यवहारिकता को देखा जा सके। इस परियोजना के सभी प्रतिभागियों से कहा गया कि वे अनुभवों और अभ्यासों को सिद्धान्तीकृत करें और उन सभी अन्तर्निहित सिद्धान्तों को लिखित रूप दें जो उनके अभ्यासों को निर्देशित करते हैं। दूसरी बात, जब भी कोई समस्या सामने आई तो कुछ उपयुक्त सिद्धान्तों की मदद ली गई और उसके बारे में कुछ अन्तर्दृष्टि प्राप्त करने का प्रयास किया गया। इसी तरह तर्कों की तार्किक स्थिरता, वैध आलोचना के लिए खुलापन, नवाचार और समस्या से जूझने के प्रयास के लिए प्रतिबद्धता को हमेशा महत्व दिया गया। संक्षेप में, इस परियोजना का यह मानना था कि अगर शिक्षण पोर्टफोलियो लेखन और उस पर आपसी चर्चा करने का कार्य सही तरीके से किया जाए तो शिक्षकों में कुछ स्थायी बौद्धिक परिवर्तन लाए जा सकते हैं। और ये परिवर्तन और कुछ नहीं अपितु सैद्धान्तिक समझ, मूल्य, मनोवृत्ति और क्षमताएँ हैं जो मनन और मननशील अभ्यास के लिए जरूरी हैं। इस तरह के परिवर्तनों को स्थायी रूप में इसलिए देखा जा रहा था क्योंकि अगर आपने एक बार इसमें महारत हासिल कर ली तो आप उसे भूल नहीं सकते; भले ही आपको बाहर से कोई मदद मिले या न मिले।

2. ये सब कैसे हुआ?

यहाँ सभी प्रक्रियाओं का विस्तार के साथ वर्णन नहीं किया जा सकता। लेकिन यह जानना उपयोगी होगा कि हमने 30 शिक्षकों के समूह के साथ शुरुआत की पर अन्ततः हम उनमें से केवल 20 शिक्षकों का ही एक सक्रिय समूह गठित कर पाए। इन सबने साथ मिलकर पर्यावरण विज्ञान, भाषा और गणित शिक्षण सम्बन्धी विभिन्न मुद्दों पर 70 शिक्षण पोर्टफोलियो प्रविष्टियाँ लिखीं। तीन साल (अप्रैल 2013 से मार्च 2016 तक) की अवधि के दौरान इस समूह ने पोर्टफोलियो प्रविष्टियों और उभरते मुद्दों पर चर्चा करने के लिए सहकर्मी समूह की आठ बैठकें आयोजित कीं। दिगन्तर ने जानबूझकर इन सबमें अपनी भूमिका न्यूनतम रखी ताकि शिक्षकों में इस कार्यक्रम के प्रति स्वामित्व और स्वनिर्भरता का भाव विकसित हो सके। हालाँकि इसे क्रमिक रूप में किया गया। शुरुआत में टीम के कुछ सदस्यों (विशेष रूप से जो दिगन्तर के थे) द्वारा जरूरी सहायता की गई ताकि समूह को पोर्टफोलियो प्रविष्टियों की रूपरेखा के निर्माण में और बाद में उसके अनुसार उन्हें लिखने में सहायता मिल सके। एक अन्य महत्वपूर्ण कारक था फागी में सहकर्मी समूह की बैठक (भले ही यह मासिक हो) के आयोजन के लिए केवल एक दिन की दरकार थी। यह शिक्षा तंत्र से एक न्यूनतम अपेक्षा थी।

3. अन्ततः इसके परिणाम क्या निकले?

मेरे निजी अनुभव और परियोजना की टीम के विश्लेषण बताते हैं कि इससे कई सकारात्मक परिणाम सामने आए। इनमें से कुछ प्रमुख और महत्वपूर्ण निष्कर्षों को इस प्रकार से समझा जा सकता है :

(क) पोर्टफोलियो प्रविष्टियों के लेखन की पूरी यात्रा के दौरान और उन पर होने वाली बैठकों में मैंने व्यक्तिगत रूप से समूह के प्रत्येक सदस्य की गतिविधियों पर ध्यान दिया। इसमें कई बदलाव देखने को मिले । यदि आप किसी सदस्य द्वारा लिखी गई पहली पोर्टफोलियो प्रविष्टि की तुलना उनके द्वारा लिखी गई अन्तिम प्रविष्टि से करते हैं तो साफ नजर आता है कि शैक्षिक वास्तविकता को समझने की उनकी क्षमता बढ़ गई है। शुरू में वे अपने कक्षा के अनुभवों को सतही तौर पर ग्रहण कर पाते थे - उन्होंने क्या योजना बनाई? उन्होंने क्या किया? आज क्या हुआ? आदि। उसमें 'क्यों' प्रश्न का विवरण लगभग नहीं के बराबर था। किन्तु इस परियोजना के अन्त तक उन्होंने 'क्यों' के बारे में सोचना शुरू कर दिया - आखिर मैं यह सब क्यों पढ़ाऊँ? मैं ऐसा क्यों कर रहा/रही हूँ? शिक्षा क्यों? मैं शिक्षक क्यों हूँ? इससे यह इंगित होता है कि उनमें सिद्धान्तीकरण और अपने अभ्यासों की समीक्षा करने की मनोवृत्ति विकसित हुई है।

(ख) विश्लेषण से पता चलता है कि शुरू में सदस्य 'इन एक्शन' (यानी शिक्षण क्रिया के दौरान) वाली सोच और अभ्यास पर ध्यान केन्द्रित करते थे। लेकिन धीरे-धीरे वे 'क्रिया के पहले' और 'क्रिया के बाद' के बारे में भी सोचने लगे। यह पोर्टफोलियो के हमारे ढाँचे की वजह से था जिसमें शिक्षकों को अपनी योजनाओं, उनके संचालन और उनके मूल्यांकन के बारे में लिखना था। इसलिए शिक्षण के बारे में चिन्तन का एक चक्रीय तरीका उभरता सा प्रतीत हो रहा है जिसमें प्रतिभागियों के बीच 'कर्ता' और 'दृष्टा 'की मनोवृत्ति विकसित होती हुई प्रतीत होती है।

(ग) सहकर्मी शिक्षक-समूह की बैठकें बहुत उपयोगी साबित हुईं। इस तरह की बैठक जहाँ महीने या दो महीने में एक बार बैठकर शिक्षक अपने अनुभवों पर चर्चा कर सकें बहुत महत्वपूर्ण साबित हो सकती है। मैंने खुद महसूस किया इस तरह की बैठकें कई प्रकार के कार्य करती हैं। धीरे-धीरे लोग अपने अनूठे व्यक्तित्व के साथ सामने आते हैं जिसमें उनके पेशेवर जीवन सम्बन्धी विशेष अनुभव और समस्याएँ निहित होती हैं। समय के साथ-साथ हम सभी ने देखा कि समूह में सभी की समस्याओं, मान्यताओं, धारणाओं और अनुभवों में एक प्रकार की समानता है जो स्पष्ट रूप से सबके सामने आ रही हैं - सारी बैठकों में हमने महसूस किया मानो शैक्षिक अभ्यासों और समस्याओं की एक सामूहिक चेतना उभर रही है। मेरा मानना है कि यह बहुत महत्वपूर्ण बात है। यह शायद एक ऐसी बुनियादी अवस्था है जिसे हासिल किया जाना चाहिए, क्योंकि यह उन लोकाचारों और सरोकारों के विकास में सहायक है जो किसी समूह को एक खुद-मुख्तियार समूह बनाता है । ऐसी सामूहिक जागरूकता सम्भवतः स्व- संचालन की ओर पहला कदम है।

निष्कर्ष

अगर यह परियोजना कुछ साल और जारी रहती तो शायद और अधिक महत्वपूर्ण अन्तर्दृष्टि और समझ हासिल होती। हालाँकि इसके माध्यम से जो भी अन्तर्दृष्टि हमें मिली वह काफी उत्साहजनक और सकारात्मक है। शायद मासिक बैठकों के रूप में एक स्थान (शिक्षा-व्यवस्था से की जाने वाली न्यूनतम अपेक्षा जिसमें शिक्षक और अन्य हितधारक इकट्ठे हो सकें और एक ऐसे समूह का गठन कर सकें जो अपने ही अभ्यासों का अध्ययन, उन पर चर्चा, बहस और सवाल कर सकें) और शिक्षक पोर्टफोलियो लेखन से शिक्षकों को वे सारी आवश्यक स्थायी बौद्धिक क्षमताएँ और मनोवृत्तियाँ प्राप्त हो सकती हैं जो उन्हें किसी भी प्रकार की निर्भरता से मुक्त कर दे और एक बेहतर पेशेवर शिक्षक बनने में मदद कर सकती हैं।

कुलदीप गर्ग अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन, जयपुर में कार्यरत हैं। उन्होंने 2007 से 2016 के दौरान एक दशक तक दिगन्तर के साथ कार्य किया। उनसे kuldeep.garg@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद** : नलिनी रावल **अनुवाद सम्पादन :** कुलदीप गर्ग